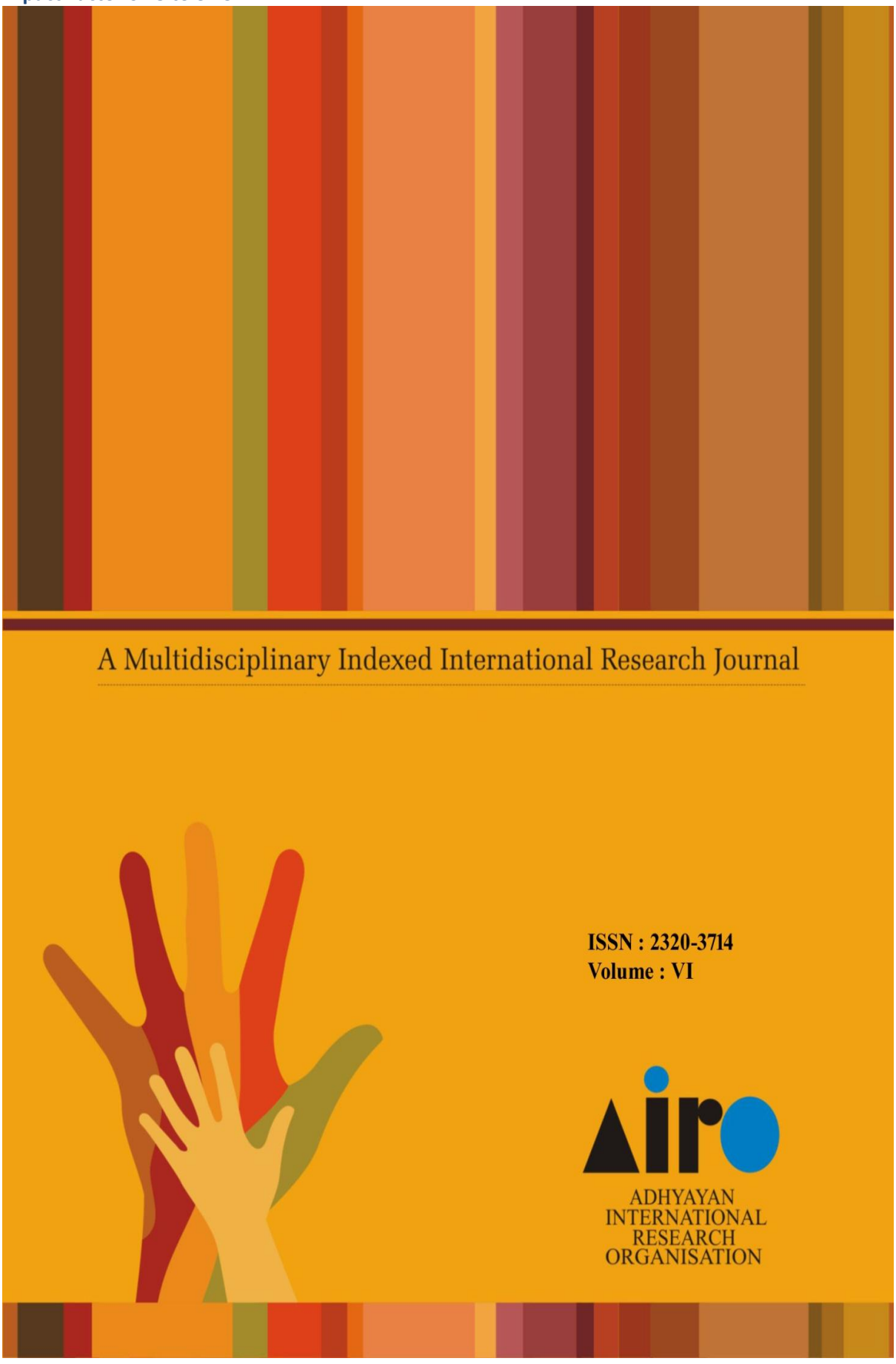
A Multidisciplinary Indexed International Research Journal
ISSN : 2320-3714
Volume : VI
Airo
ADHYAYAN
INTERNATIONAL
RESEARCH
ORGANISATION

Airo International Research Journal
Volume VI, ISSN: 2320-3714
Impact Factor 0.75 to 3.19
October, 2015

नारी का संकट और समकालीन सभ्यता

Dr. Krishna Kumar Thakur

Asst. Professor Hindi Century Cement College Baikunth (C.G.) Dist. Raipur

Declaration of Author: I hereby declare that the content of this research paper has been truly made by me including the title of the research paper/research article, and no serial sequence of any sentence has been copied through internet or any other source except references or some unavoidable essential or technical terms. In case of finding any patent or copy right content of any source or other author in my paper/article, I shall always be responsible for further clarification or any legal issues. For sole right content of different author or different source, which was unintentionally or intentionally used in this research paper shall immediately be removed from this journal and I shall be accountable for any further legal issues, and there will be no responsibility of Journal in any matter. If anyone has some issue related to the content of this research paper's copied or plagiarism content he/she may contact on my above mentioned email ID.

प्रस्तावना:

समकालीन सभ्यता और उसमें नारी की स्थिति पर विचारार्थ आगे बढ़ने से पूर्व '' नारी पात्रों में मन–मस्तिष्क का द्वन्द '' में प्रयुक्त मन मस्तिष्क के पदबन्ध पर प्रकाष डालना समोचीन होगा। मनुष्य के भीतर चेतना का जो पीठ है, उसे हम '' मानस '' या '' मन '' के रूप में जानते–पहचानते हैं। इस '' मानस '' या '' मन '' के दो बहुत मोटे विभाग किये जाते रहे हैं –'' बुद्धि '' और '' ह्रदय '' '' बुद्धि '' मन का वह आयाम है जिससे हमारे दैनंदिन जीवन के समस्त कार्य–कलाप निष्चित–निर्धारित होते हैं। आत्म–रक्षा जिसके तहत अन्न–संपादन का कार्य भी समाविष्ट हो जाता है, और आत्म विकास की बुनियादी जैविक प्रवृत्तियों से लेकर जीवन–यापन की रीतियों वा समाज, राजनीति आदि से जुड़े समस्त विधाओं तक का संबंध इसी बुद्धि–तत्व से है। दूसरी ओर ह्रदय का संबंध मानव मन की उन रागात्मक वृत्तियों से है जिनके जरिये हम मानव–समाज वा व्यापक विष्व–जीवन के साथ जुड़ते हैं। मनुष्य के समस्त नैतिक चेतना, सदाचार, मूल्य–संहितायें–जिन्हें हम सामान्यत : संस्कृति के नाम से अभिहित करते हैं – आदि इसी ह्रदय वृत्ती पर निर्भर हैं। विवेक वृत्ति, न्याय–बुद्धि, विकसित धर्म–चेतना आदि भी इसी के पर्यायवाची शब्द हैं। संक्षेप में मनुष्य की समस्त मनुष्यता, मानवता या इन्सानियत इसी ह्रदय–वृत्ती पर आधारित है। इन्हीं बुद्धि और ह्रदय–तत्वों की समुचित, सामंजस्यपूर्ण विकास पर ही मानव–जीवन वा सभ्यता–संस्कृति का स्वास्थ्य निर्भर करता है। अब इसी बुद्धि–तत्व को प्राय : मस्तिष्क की संबा दी गयी है और उपर के पदबन्ध में '' मन '' शब्द को ह्रदय के पर्यायवाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया है। यह स्थानापन्नता बहुत आदर्श तो नहीं है, फिर भी '' मन – मस्तिष्क '' में जो लय और संगीतात्मकता है उसके कारण ऐसा किया गया है, लेकिन वह प्रयोग यहाँ पर पहली बार नहीं किया है। उसकी अपनी एक लम्बी परम्परा है। इसी बल पर यहाँ हमने ह्रदय और मस्तिष्क के स्थान पर मन–मस्तिष्क के पदबन्ध का प्रयोग किया है,

यूँ देखा जाय, तो साहित्य और मनोविज्ञान में '' मन '' शब्द के अर्थ

नितांत भिन्न स्तर के हैं और चिकित्सा–शास्त्र में तो '' मस्तिष्क '' मनुष्य की कपाल–पेटिका में सुरक्षित माँस–पिण्ड के रूप में वर्णित होते हुए भी अपने निर्माण और कार्य–शैली के कारण मनुष्य को समस्त बाह्य–अनुभूतियों का बोध कराते हुए उसकी यथोचित क्रिया–प्रतिक्रिया हेतु आवष्यक प्रेरणा देने वाले ऊर्जा स्त्रोत के रूप में वर्णित हुआ है। अत : स्पष्ट है कि मस्तिष्क ही मानव की विचारधारा का मूल स्त्रोत है और विचारों के अंतर्गत विद्यमान सूक्ष्म भिन्नताओं के आधार पर मन और मस्तिष्क का अस्तित्व निरूपित हो चुका है। जिस प्रकार चिकित्सा–शास्त्र में मस्तिष्क एक महत्वपूर्ण गोचर यथार्थ है, उसी प्रकार मनोविज्ञान में मन एक अगोचर सत्य है। हमारे दैभदिनि व्यवहार के विभिन्न संदर्भों में अलग–अलग अर्थों और मुहावरों में प्रयुक्त होने वाले इस मन और मस्तिष्क के व्यवहारिक से विषिष्ट तक अर्थ एवं परिभाषायें विभिन्न स्त्रोतों से उपलब्ध हैं, उन्हें अधोलिखित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि सामान्य व्यवहार और शोध–प्रबन्ध में प्रयुक्त इन शब्दों के अर्थबोध में अंतर क्या है इन दोनों के साथ–साथ '' द्वन्द '' शब्द की भी व्याख्या दी गयी है, जिससे कि शोध–प्रबन्ध के शीर्षक को पूर्णता प्राप्त हो।

समकालीन सभ्यता का स्वरूप:

नारी के भीतर जिस मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व की बात यहाँ हम कर रहे हैं, वह आधुनिक युग और सभ्यता की उपज है इसलिए इस द्वन्द्व की इस ऐतिहासिक नेपथ्य पर प्रकाष डालना यहाँ आवष्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

मन और मस्तिष्क का द्वन्द्व आधुनिक सभ्यता का एक प्रमुख लक्षण है। महाकवि जयषंकर प्रसाद के '' कामायनी '' काव्य में सारस्वत कथा के तहत जिस '' अभिनव मानव प्रजातंत्र '' की बात की गयी है, उसके बारे में समस्त सुधी आलोचक एक मत है कि ये सारस्वत कथा और उसका अभिनव मानव–तंत्र कुछ और नहीं, बल्कि आज की हमारी भौतिकवादी सभ्यता का ही काव्यगत वस्तु निष्ठ प्रतिरूप है। इस अभिनव मानव के प्रजातंत्र के प्रतिरूप का विष्लेषण करते हुए प्रसाद जी ने एक मार्के की बात कही है।

'' मस्तिष्क ह्रदय के हो विरूद्ध दोनों में
हो सद्भाव नहीं

वह चलने को जब कहेंकहीं तब ह्रदय
विकल चल जाय वहीं। [1]

मस्तिष्क और ह्रदय का यही वैरूद्य आज की भौतिकवादी विज्ञान–मलक सभ्यता की खासी पहचान है। औद्यौगिक सभ्यता के रूप में व्यवहृत होने वाली यह सभ्यता ऐतिहासिक दृष्टि से यूरोप के पूनर्जारण के साथ अस्तित्व में आती है। आस्था और विष्वास पर आधारित पूर्व–वर्ति धार्मिक सभ्यता के स्थान पर बौद्धिकता पर आधारित वा तर्क मूलक नयी सभ्यता का विकास हुआ, तो उसका बाहरी रूप आरम्भ में चाहे जितना अस्पष्ट और भ्रामक रहा हो, पर कालान्तर में यह बात

स्पष्ट होती गयी कि इसमें बुद्धि, तर्क, अविष्वास, स्थूलता आदि का बोल–बाला है।

'' मन की कोमल वृत्तियों – जिनको हम ह्रदय के रूप में जानते पहचानते हैं के लिए इस में स्थानाभाव है ई. पू. शताब्दी की विज्ञान–चालित सभ्यता का झुलसानेवाला रूप आज हमारे सामने अत्यंत ही स्पष्ट है और यह उसी का परिणाम या फल है जिसके बीज यूरोपीय पुनर्जागरण में पड़े थे। आज की इस सभ्यता में ह्रदय निष्काशित है– जैसे कि कामायनी की समस्त सारस्वत कथा के दौरान कामायनी की '' श्रद्ध '' निर्वासित – निष्कासित है –और मस्तिष्क का बुद्धि–वृत्ति का अतिबौद्धिकता का भाषण दुर्धषचक्र अपनी समूची निर्ममता व अमानवीयता के साथ गतिषील है। जो ह्रदय वृत्ति प्रधान नारी के लिए निष्चय ही भारी पड़ रहा है।

समकालीन सभ्यता और नारी का संकट :

आधुनिक सभ्यता की अंतरात्मा के विषेषज्ञ विष्लेषक कामायनीकार ने कामायनी श्रद्धा को संबोधित करते हुए कहलवाया है–

''नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विष्वास–रजत–नग पग तल में

पीयूष श्रोत–सी बहाकारों
जीवन के सुन्दर समतल में । '' 1

इस रूप में प्रसाद जी ने नारी को श्रद्धा–मूलक बताया है। श्रद्धा तत्व की व्याख्या करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुल्क ने बताया है कि श्रद्धा महत्व की आनन्द–पूर्ण स्वीकृति और लोक जीवन की रक्षात्मक अनुभूति है। 2 इस रूप में श्रद्धा लोक संग्रह की वृत्ती ठहरती है और हम जानते हैं कि मनुष्य के भीतर इस लोक–संग्रह वा विष्व–जीवन–सात्मीकरण की वृत्ति कुछ और नहीं, ह्रदय–वृत्ती ही है। इस रूप में नारी ह्रदय–वृत्ति–प्रधान ठहरती है और आधुनिक सभ्यता में ऐसी नारी निष्कासित है।

'' कामायनी '' महाकाव्य में आज की यांत्रिक वा भौतिकतावादी सभ्यता का काव्यगत वस्तुनिष्ठ–प्रतिरूप सारस्वत सभ्यता के पूरे दौरान ह्रदयवृत्ती की प्रतीक कामायनी श्रद्धा पूर्णतः निष्कासित है, यह बात उपर बताई गई है। कामायनी के साथ–ही–साथ प्रकाषित प्रेमचन्द के '' गोदान '' में भी ठीक यह नजारा देखने को मिलता है। उक्त उपन्यास के ह्रदय–वृत्ति–मूर्ति नारी पात्र गोविन्दी–मिसेज खन्ना भी ठीक उसी रूप में अनादृत, अपमानित और लगभग निष्कासित है। उस युग की इन दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण वा कालजयीकृतियों में यह साम्य कोई संयोग नहीं हो सकता, एक बात और भी है। श्रद्धा का तिरस्कार कर आगे बढ़ने वाला मनु जिस नारी की ओर आकृष्ठ होता है।

वह इडा कृति में तर्क बुद्धि वा बुद्विवाद की प्रतीक है। इदर गोदान में गोविन्दी का, अपनी पत्नि का तिरस्कार कर मिस्टर खन्ना जिस नारी की ओर बढ़ता है वह मालती भी उपन्यास में

आधुनिका के रूप में ही चित्रित हुई है। कृत्यंत में श्रद्धा और गोविन्दी की विजय दिखाई गयी है – इस बात को अलग रख दें, तो जो बात हमारे सामने आती है, वह यह कि आधुनिक सभ्यता और आधुनिकता का दबाव नारी को बुद्विवाद या तर्कषीलता की ओर धकेल रहा है और वह उस धृवांत की ओर बढ़ रही है, पर उसके साथ बुनियादी संकट यह है कि वह प्रकृतितः ह्रदय का प्रतीक है–उसकी जैविक भूमिका के लिए, जीवन्तता के लिए यह अनिवार्य शर्त भी है – और सभ्यता का दबाव उसे दूसरी ओर विरोधी दिषा में चलने के लिए विवष कर रहा है और इस रूप में वह विकट द्वन्द्व की षिकार बनती जा रही है। आज की नारी में मन–मस्तिष्क के द्वन्द्व का बुनियादी रूप यही है और इसी का अपने विविध आयाम व परिणतियों के साथ विष्लेषण प्रस्तुत शोध–कार्य का उद्विष्ट है, अस्तु।

नरी के मन और मस्तिष्क का यह द्वन्द्व उसके जीवन की सभी अवस्थाओं, स्थितियों और संबंद्ध क्षेत्रों में व्याप्त होकर नारी को उसकी सहम स्थिति से दूर घसीटता ले जा रहा है, जिसमें पाष्चात्य सभ्यता के प्रभाव से उत्पन्न भ्रामक स्थिति का भी अधिकांष दोष है। समकालीन सभ्यता के दायरे में नारी के मन और मस्तिष्क के द्वन्द्व की इस व्याख्या के उपरांत वर्तमान में उसकी सामाजिक पहचान को भी रेखांकित करना अत्यंत आवष्यक है।

समकालीन सभ्यता में जन्मी, पत्नि और बढ़ी नारी के लिए बहुप्रचलित संबोधन शब्द ''आधुनिक'' है। यह आधुनिका सुषिक्षिता, आर्थिक स्वावलम्बिनी और अंध रूढ़ियों का तीव्र विरोध करने वाली है। जयशंकर प्रसाद का कथन है कि नारी को '' उन बन्धनों से मुक्त करना होगा जो धर्म, आध्यात्म, नैतिकता, बाह्याचारों एवं मिथ्याडम्बरों की श्रंखृलाओं में मन–आत्मा के स्तर पर बांधे रखकर उससे मनुष्य रूप में अपनी निजी पहचान को छीन रहे हैं। '' 1 परन्तु धर्म, अध्यात्म, नैतिकता, बाह्याचारों एवं मिथ्याडम्बरों के तथाकथित जंजीरों को खण्डित करने के उपरांत भी जिस '' मनुष्य '' के रूप में पहचान की प्रबल आकांक्षा व्यक्त की गयी, उसे पाने में आज की आधुनिका सफल नहीं हो पायी है। इसका मुख्य कारण अब भी नारी ह्रदय–तत्व के धरातल पर अपने अतीत से तथा अभी–अभी उसमें विनूत्नता के साथ विकसित बुद्धि–तत्व के धरातल पर अपने वर्तमान से जुड़ी रहकर द्वन्द्व से त्रस्त है। द्वन्द्वगत नारी की इस मानसिकता का विश्लेषण करते हुए डॉ. रामविनोद सिंह कहते हैं '' ह्रदयम में कामवासना के तुनुक तार और विचारों में नवजागरण की पावन गरिमा, दिल की वासना की आंधी और हाथ में आत्मदीय, मन में रीतिकालीन छप्पन छुरी और भाल पर गांधीवादी तिलक में दो धृवांतों की दूरी है इसलिए ऐसी नारियाँ नहीं तो अश्रुस्नात यौवन की विफलता को भोगों से शांत पर पाती है और न ही नवजागरण का मंगलगान ही गा पाती हैं। अर्थात् इतनारियों में न राग की प्रधानता है न ज्ञान की ।''

वैदिक साहित्य–मन का अर्थ–बोध :

वैदिक साहित्य के अनुसार इस संपूर्ण सृष्टि की रचना, निर्वाह और लय की पृष्ठभूमि में सक्रिय एक असीम सत्ता स्वंय अपनी ही सृष्टि के प्रत्येक कण में विद्यमान है। जो परमात्मा शब्द के साथ अनेकानेक संज्ञाओं से अभिहित है, जिनमें '' आत्मा '' शब्द भी एक है। समस्त वैदिक साहित्य के सारभूत तत्व को अपने में संगृहित किये हुए गीता–षास्त्र के षष्टम अध्याय के पाँचवे और छठवें श्लोकों में एकाधिक बार प्रयुक्त यही '' आत्मा '' शब्द–प्राणियों में विद्यमान चेतना शक्ति के साथ–साथ मन का भी अर्थबोध कराता है तथ इन श्लोकों में मन की कतिपय विषेष वृत्तियों की ओर भी स्पष्टतः इंगित किया गया हैं।

'' उद्वरे दात्मनात्मानं नात्मान मवसाद्वयेत्।

आत्मैव ह्यात्मनो बन्धु रात्मैव रिपु रात्मन :।। ''

–अर्थात् '' भिन्न–भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त '' आत्मा '' शब्द देह, मन और आत्मा की अर्थ–प्रतीति कराता है। योग विद्या के अंतर्गत मन और बद्ध–आत्मा दोनों का प्रमुख स्थान है। मन ही योग विद्या का केन्द्र होने के निमित्त यहाँ आत्मा से तात्पर्य मन ही है। मन को अपने अधीन रखते हुए, इन्द्रियों को विषयानुरक्ति की मुक्ति हेतु मन को तथानुकूल प्रशिक्षित करने की आवश्कता पर यहाँ बल दिया गया है। भौतिक जीवन में मनुष्य अपने मन और इंद्रियों के अधीन ही प्रतिकृत रहता है। भौतिक जगत पर अधिकार पाने की इच्छा को प्रेरित करने वाले दुरहंकार से मन के जुड़ जाने के कारण ही विशुद्ध आत्मा भी भौतिक जगत से आबद्ध हो जाती है। इंद्रिया शक्ति में पड़कर मनुष्य को अपने को निम्न स्तर पर नहीं पहुँचाना चाहिए। कृष्ण भक्ति में मन को तल्लीन रखने पर ही इंद्रियाशक्ति से मुक्त रहा जा सकता है।''

'' बन्धु रात्मात्मन स्तस्य येनात्मैवात्मना जित :

अनात्मनस्तु शतृत्वे वर्तेतात्मैव शतृवत्। ''2

–अर्थात् '' मानव द्वारा कर्तव्यों को निभाने में अपने मन को मित्र बनाये रखने हेतु उस पर नियंत्रण करना ही अष्टांग योग साधना का प्रयोजन है।

यदि मन पर नियंत्रण नहीं किया जाता है, तो योग साधना मात्र प्रदर्शन बनकर रह जायेगा। मन पर नियंत्रण न रख सकने वाले की स्थिति सर्वदा अपने शत्रु के संग जीवन बिताने के समान हो जाती है। जब तक मन अजीवित शत्रु के समान रह जाता है, तब तक वह व्यक्ति काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि वृत्तियों का दास बना रहा है। अत : कृष्ण भक्ति में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए ही परमात्मा की आज्ञाओं का पालन संभव है। ''

इस प्रकार गीता के ये श्लोक प्रकारांतर से मन की चंचल प्रवृत्ती तथा आध्यात्मिक उन्नति हेतु उस पर पूर्ण नियंत्रण की अनिवार्यता पर प्रकाश डालते

हैं। इसी प्रकार अमूतबिन्दूपनिषद में कहा गया है कि –

'' मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयो :

बन्धाय विषयासंगो मुक्यै निर्विषयं मन : ''

अर्थात् – '' मनुष्य के लिए उसका मन ही बन्धन अथवा मोक्ष का कारण बनता है। इन्द्रियाशक्ति में लिप्त मन बद्ध होता है और इन्द्रियों के प्रति अनाशक्त मन मोक्षगामी होता है। '' घ्यातव्य है कि इंद्रियों के प्रति अर्थात् नैसर्गिक अनुभूतियों और इच्छाओं के प्रति मन का तीव्र आकर्षण उसका एक सहज तत्व ही है। वैचारिक भिन्नता को ही रेखा बनाते हुए जब मन और मस्तिष्क को हृदय–तत्व और बुद्धि–तत्व के रूप में विश्लेषित किया जायेगा, तब मन संबंधी इन समस्त तत्वों को उसकी क्रिया–प्रतिक्रिया के लिए कारणवत् प्रस्तुत किया जायेगा। भारतीय दर्शन की विविध शाखाओं में मन संबंधी विशद व्याख्या विश्लेष्ण उपलब्ध है, जिनके अवलोकन मात्र से मन संबंधी शंकाओं का निदान ही नहीं हो, प्रत्युत् जीवन निर्वाह हेतु एक अमूर्त शक्ति के रूप में उसका अस्तित्व भी सु–दृढ़ हो जायेगा। न्याय दर्शन के अनुसार '' मनन करने वाले साधन को मन कहा जाता है। मनन् अर्थात् सोचना–विचारना आदि। यह मन, इद्रिय और आत्मा के बीच संबंध स्थापित करने वाला एक माध्यम है। इसलिए वह बाह्य और आभ्यंतर, दोनों प्रकार की इन्द्रियों से संबंध है। किन्तु उसकी विशेषता इसमें है कि वह अस्पृश्य अदृष्ट होते हुए भी क्रियाशील है। वह अनुमान–सिद्ध है। वह इतना द्वतगामी है कि एक बार एक विषय पर अधिष्टित रहता हुआ भी तरंगस्थ जलबिन्दु की भाँति अपने अस्तित्व को विलय करके हमारे भीतर के अनेकत्व एवं पूर्वापर का भेद मिला देता है, और इसीलिए हम रोटी खाते समय उसके रूप, रस, गंध, स्पर्श का एक साथ अनुभव करते हैं।'' 1 न्याय दर्शन की इस टिप्पणी से मन के चिन्तन् करने की शक्ति बाह्य जगत संबंधी पदार्थों के ज्ञान को संचित रखने की क्षमता और दूरस्त वस्तु एवं व्यक्तियों तक कल्पना के माध्यम पहुँच सकने की कुशलता जैसे – विशेष तत्वों का उद्घाटन होता है।

'' वैशेषिक दर्शन '' में मन के लिए दिए गए विश्लेषण से उसके प्रमुख आठ तत्वों के साथ उसकी उस शक्ति का भी स्पष्ट बोध होता है जो कि वस्तु जगत से पदार्थ संबंधी ऐंद्रीय अनुभूतियों को संचित एवं समन्वित कर एक निश्चित भावना के रूप में उसे आत्मा तक पहुँचाने के काम करती है। इस दर्शन में लिखा गया है कि '' मन '' उसको कहते हैं, जो सुखादियों के ज्ञान का साधक (करण) होता है।यही सुखादियों की उपलब्धी ही उसका विषेष गुण है। ये सुख–दुःखादि क्यों कि आभ्यतरिक हैं । इसलिए इनका अनुभव करने के लिए आभ्यन्तरिक साधन की आवष्कता होती है। ज्ञान, इच्छा और सुख दुःखादि जो आभ्यन्तरिक पदार्थ हैं, उनके साक्षात्कार के लिए मन की आवष्यकता है। आत्मा, इन्द्रिय और विषय इन तीनों के रहते हुए भी जीव की ज्ञानोपलब्धि नहीं हो सकती है। वह मन का कार्य है। इन्द्रिय से गृहीत विषयों का ज्ञान मन के

द्वारा आत्मा तक पहुँचता है। इसलिए जब मन अन्यत्र रहता है तब जीवात्मा को ज्ञानोपलब्धि नहीं हो सकती है। मन के आठ सामान्य गुण हैं–

1. संख्या (अनन्त) 2. परिमाण, 3. पृथकत्व, 4. संयोग, 5. विभाग, 6. परत्व, 7. अपरत्व और 8. वेग।

वैषेषिक के अनुसार एक एक शरीर में एक एक मन अणुरूप में विद्यमान रहता है। अतः मन निरवयव है, अणुरूप है, और प्रत्यक्ष का आभ्यन्तरिक साधन है। वह एक अन्तराष्ट्रिय है, जिसके द्वारा आत्मा विषयों का ग्रहण करता है। ''

मन अत्यंत संवेदनषील रूप में प्रतिकृत होने वाले इंद्रिय के साथ–साथ संकल्प–षक्ति से युक्त ज्ञान के रूप में भी अभिवर्णित हुआ है। आचरणीय और अनाचरणीय का बोध कराने वाली अंतरवर्तिनी तर्क–बुद्धि अथवा विवेक को ही सांख्य–दर्षन में मन माना गया है, यथा – '' मन उभयात्मक इंद्रिय है। ज्ञानेन्द्रिय के साथ कार्य करने से वह ज्ञानेन्द्रिय का रूप धारण कर लेता है और इसलिए मन वस्तुतः लोचदार इन्द्रिय है। संकल्प और विकल्प उसके विषय है, धर्म है, स्वरूप है।

मस्तिष्क की चीर–फाड़ :

वैज्ञानिक अनुसंधान में तथ्यों की प्राप्ती हेतु प्राणियों के देह और पदार्थों की चीर–फाड़ की जाने की प्रणाली अपनाई जाती है। इसी प्रकार यहाँ मस्तिष्क शब्द की भी चीर–फाड़ अर्थात् अर्थ विष्लेषण का उपक्रम किया जा रहा है, जिससे कि मस्तिष्क संबंधी विभिन्न अवधारणाओं का उद्घाटन हो सके। मन एक अगोचर यथार्थ होने के कारण तत्संबंधी अवधारणाओं की प्राप्ती हेतु '' विष्लेषण '' शब्द का प्रयोग किया गया है और मस्तिष्क एक गोचर पदार्थ होने के कारण उससे संबंधित सिद्धांतों और विचारों की व्याख्या के लिए चीर–फाड़ शब्द का प्रयोग किया गया है।

संस्कृत पुल्लिंग शब्द ''मस्तिष्क'' का प्रयोग व्यवहार में दिमाग और भेजा जैसे शब्दों से होता है। अंग्रेजी में इसके लिए प्रयुक्त शब्द ''ब्रेइन'' है। मन और मस्तिष्क के द्वन्द की अनिवार्य स्थिति के व्याख्या – विष्लेषण से पूर्व यह निष्चित कर लेना अत्यंत आवष्यक है कि ''मस्तिष्क'' मानव की कपाल पेटिका में सुरक्षित मांसपिंड मात्र न होकर ''बुद्धि–तत्व'' का प्रतिनित्य भी करता है। यद्यपि मस्तिष्क में ही ह्रदय–तत्व और बुद्धि तत्व से संबंध विचारधारा में फूट पड़ती है, किन्तु इन विचारों में विद्यमान अंतर को ग्रहण करने हेतु उक्त दोनों तत्वों को क्रमष : ''मन'' और ''मस्तिष्क'' शब्दों से सूचित किया गया है। अतः बुद्धि–तत्व के लिए मस्तिष्क शब्द को उपयुक्तता और प्रामाणिकता के निर्धारण से पूर्व तत्संबंधी परिभाषाओं पर विहंगम दृष्टिपात कर लेना अत्यंत आवष्यक है।

भौतिक जगत में देखा जाय तो ह्रदय–तत्व नारी–प्रवृत्ती के रूप में और बुद्धि–तत्व पुरूष–प्रवृत्ती के रूप में अभिवर्णित है लेकिन इसका तात्पर्य यह नहीं कि नारी में बुद्धितत्व और पुरूष में ह्रदय–तत्व की कल्पना ही नहीं की जा

सकती। प्राचीन युग से अर्वाचीन युग तक उक्त अपवाद के उदाहरण मिले जाते हैं, जिन्हें प्राचीन युग से अर्वाचीन युग तक उक्त अपवाद के उदाहरण मिल जाते हैं, जिन्हें हम पारिवैशिक प्रभाव की प्रतिक्रिया मान सकते हैं। ध्यातव्य है कि यहाँ विवेच्य विषय नारी के व्यक्ति तत्व में बुद्धि–तत्व की व्यूत्पत्ति और उन्मीलन किन परिस्थितियों में होता है तथा उसे किस प्रकार नारी की सहज प्रवृत्ति अर्थात् ह्रदय–तत्व से संघषरत होना पड़ता है। ह्रदय और बुद्धि परस्पर विरोधात्मक तत्व होने के कारण उन दोनों की अस्मिता समान रूप में किसी एक ही व्यक्तित्व में निर्द्वन्दता की स्थिति में रहना असंभव है। अतः मन और मस्तिष्क के द्वन्द की व्याख्या से पूर्व द्वन्द शब्द का विष्लेषण कर लेना भी आवष्यक है।

उपसंहार

जीवन की समस्त गति–विधियों और क्रिया प्रतिक्रियाओं को पूरे संदर्भों के साथ विस्तार में रूपायित और विष्लेषित कर सकने की पूर्ण क्षमता औपन्यासिक विधा में होने के कारण उक्त नारी के मन–मस्तिष्क का द्वन्द्व इस विधा के लिए एक अत्यंत जीवंत तथ्य बन सका। स्वतंत्रता पूर्ववर्ती उपन्यास साहित्य में अधिकांषतः नारी–चरित्र की विषुद्धता के लिए आवष्यक आदर्षों और उपदेषों की भरमार है। नारी–मनोविज्ञान के विष्लेषण संदर्भ में लगभग उपेक्षित से समझे जाने वाले इस युग की औपन्यासिक–विधा में भी यदा–कदा अप्रत्याक्षित ढंग से ही सही नारी के मन–मस्तिष्क का यह द्वन्द्व कतिपय उपन्यासों में वर्णित हुआ है।

सामन्तवाद के नवीन संस्करण के रूप में पूँजीवाद के अवतरित होने के उपरांत सामाजिकों की विचारधारा और जीवन–षैली में परिवर्तन तो घटित हुए, परन्तु उसका प्रभाव नारी–मानसिकता पर अधिकांषतः पाष्चात्य सभ्यता के प्रति आकर्षण के रूप में ही पड़ा और नारी–मानसिकता के इस झुकाव को पुरूष की अवसरवादी और भोगवादी प्रवृत्ति से अधिकाधिक प्रेरणा भी मिली। यदि नारी–वर्ग जरा भी लाभान्वित हुआ, तो उक्त परिवर्तन के परिणाम स्वरूप उसे सुषिक्षित होने अपने अपहृत अधिकारों की प्राप्ति हेतु सजग होने, उनके लिए विद्रोह करने और अपनी स्थिति को सुधारने की आवष्यकता का अनुभव हुआ। नारी के व्यक्तित्व में विकसित इस नयी चेतना से सतर्क पुरूष–वर्ग भी नारी–षोषण के नये उपायों के अन्वेषण में लग गया। परिणामतः विज्ञान का ऐसा दुरूपयोग आरम्भ हो गया कि जहाँ स्त्री–षिषु के जन्म की संभावना को ही समाप्त कर दिया जाना आरम्भ हो गया, वहीं परिवार में कन्याओं के साथ पक्षपातपूर्ण व्यवहार, कामकाजी महिलाओं के साथ पुरूष की अतृप्त यौनभावना के दुर्व्यवहार, वैवाहिक जीवन में दाम्पत्येतर संबंधों की स्थापना आदि में एक अनियंत्रित बढ़ौत्री–सी आ गयी। पुरूष–वर्ग द्वारा किये जा रहे इस बाह्याभ्यन्तर–वार को एक चुनौतीपूर्ण उत्तर देने के लिए नारी वर्ग को ईंट का जवाब पत्तर से वाले मार्ग को अपनाना पड़ा। कहना न होगा कि इस तरह

आत्मरक्षा की अनिवार्य भावना की प्रेरणा ही नारी–मानसिकता में बुद्धि–तत्व के उन्मीलन का प्रमुख कारण रहा। इस तथ्य से संबंध अन्य प्रमुख कारणों में दीर्घकाल से शोषक बने पुरूष के प्रति प्रतिषोधात्मक प्रतिक्रिया अपनाने और पाष्चात्य–सभ्यता को ही सच्ची स्वाधीनता मान लेने की भ्रमित धारणा भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सितारों के खेल – उपेन्द्रनाथ अश्क – नीलाभ गृह प्रकाशन, त्याग – सं. 1940
2. पर्दे की रानी – इलाचन्द्र जोशी – भारती भंडार, इलाहाबाद – सं. 1941
3. चढ़ती धूप – रामेश्वर शुल्क ''अंचल'' – हिन्दुस्तानी प्रकाशन, इलाहाबाद – सं. 1945
4. दिव्या – यशपाल – सं. 1945
5. बूँद और समुद्र – अमृतलाल नागर – किताब महल, इलाहाबाद – सं. 1947
6. अचल मेरा कोई – वृंदावन लाल वर्मा – सं. 1948
7. सीधे–सादे रास्ते – डॉ. रांगेय राघव– सं. 1949
8. पथ की खोज – डॉ. देवराज – बुद्धिवादी प्रकाशन, लखनऊ – 1, सं. 1951
9. सोमनाथ– आचार्य चतुरसेन – सं. 1954
10. बगुला के पंख – आचार्य चतुरसेन – सं. 1958
11. अजय की डायरी – डॉ. देवराज – राजपाल एण्ड सन्स – सं. 1960